लाओत्से

Badar Ara
Professor
Dept. of A.I.H. & Archaeology,
Patna University, Patna-800005
Mob-9431877688

P.G. / M.A. IInd Semester,

Dept. of A.I.H. & Archaeology, Patna University

Paper- Ancient World Civilization

लाओत्से (Lao-Tse) जिसके नाम का अर्थ 'ओल्ड मास्टर' (Old Master) होता है, के जीवन–वृत्त के सम्बन्ध में हमें विशद् ज्ञान प्राप्त नहीं है। ऐसा कहा जाता है कि उसका जन्म लगभग 604 ई० पू० के आसपास हुआ था और 87 वर्ष की उम्र में वह संसार से चल बसा। इतिहास में वह एक रहस्यवादी दार्शनिक के रूप में चर्चित है जीवन के प्रारम्भिक काल में लाओत्से विलासिता और सांसारिकता से घोर घृणा किया करता था। युवावस्था प्राप्त करते ही लाओत्से ने एक विद्वान तथा दार्शनिक के रूप में अपनी खयाति फैलाई। उसकी विद्वता तथा प्रतिभा से प्रभावित होकर चाऊ शासक ने उसे राज्य के सरकारी पुस्तकालय का अध्यक्ष बना दिया। किन्तु लाओत्से लम्बे समय तक अध्यक्ष पद पर काम न कर सका। चीन की अस्त–व्यस्त व्यवस्था और चाऊ राज्य को पतन के कगार पर देखकर वह पश्चाताप करता था | अपने देश को इस स्थिति में देखना उसके लिए असहनीय था। इसीलिए उसने इसकी दशा में सुधार एवं परिवर्तन लाने के लिये संकल्प लिया उसने अध्यक्ष पद का त्याग दिया और गाँवों में घूम–घूमकर लोगों को

उपदेश देना प्रारम्भ किया। सरकारी नौकरी से मुक्ति पाने के बाद अब उसके पास समय था जिसका उपयोग उसने शिक्षा एवं उपदेश देने में किया। उसने तीन बातों पर अधिक बल दिया– प्रकृति, नैतिक आचरण और सामाजिक कर्त्तव्य । उसने सभ्यता के आडम्बर तथा तड़क–भड़क की भी कड़ी आलोचना की । उसकी शिक्षा चीन के इतिहास में 'ताऊवाद' (Taoism) कहलाती है । उसके विचार 'ताओ ते–चिग' (Tao-Teh-Ching) नामक कृति में संग्रहित है ।

उपदेश : जीवन के अर्थ और उद्देश्य के विषय में विचारों की दृष्टि से भारत का बुद्ध और चीन का लाओत्से दोनों भाई थे । दोनों ही संसार के कष्ट और क्रूरता को देखकर खिन्न हो गये थे । विश्व इतिहास में कनफ्यूशियस के पहले के दार्शनिकों में लाओत्से को सर्वश्रेष्ठ माना गया है । इस दार्शनिक ने प्रकृति को अपने उपदेश का एक विषय बनाया । उसने लोगों को प्रकृति की ओर लौटने का सन्देश दिया। वह प्रकृति का पक्का पुजारी था। वह सभ्यता के आयामों की छानबीन में न पड़कर प्रकृति की गोद में स्वच्छन्द होकर विचरण करना चाहता था । डा० राधाकृष्ण शर्मा ने लिखा है कि "सुकुरात ने ज्ञान के महत्त्व पर प्रकाश डाला और अफलातून ने दर्शन एवं दार्शनिकों की महत्ता बतलायी । किन्तु लाओत्से की दृष्टि में ज्ञान तथा ज्ञानी दर्शन और दार्शनिक सभी व्यर्थ थे । वह सर्वसाधारण को ज्ञान एवं दर्शन दर्शन के बोझ से बोझिल नहीं चाहता था । वह आकांक्षापूर्ण एवं संघर्षमय जीवन का विरोधी था अत: उसका संदेश था कि प्रकृति की ओर लौट जाना ही श्रेयष्कर है । लाओत्से का तर्क था कि प्रकृति के सारे काम स्वतः हुआ करते हैं अतः मनुष्य के भी सारे काम स्वतः हुआ करेंगे । उसके विचार में "राज्य की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं हैं । प्रकृति की

गतिविधि में कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। कानून और नियम तो मनुष्य के व्यक्तित्व के स्वतन्त्र निर्माण में बाधक स्वरूप हैं। अतः समाज के सभी बन्धनों को तोड़ देना चाहिये। ज्यामीति शास्त्र की रेखाओं की तरह समाज की रचना नहीं होनी चाहिए। प्रकृति के राज्य में ही रहकर मनुष्य अपने अनुभव के आधार पर आगे बढ़ सकता है। अतीत के ही आधार पर वतमान एवं भविष्य का निर्माण हो सकता है।" लाओत्से का मत था कि प्रकृति ने मनुष्य जीवत को सरल बना दिया है और उन्हें शान्ति दी है। सम्पूर्ण संसार इसी के चलते प्रसन्न है।

इसी सन्दर्भ में लाओत्से के सांसारिकता सम्बन्धी विचार भी शामिल हैं। लाओत्से समझता था कि मनुष्य सम्पत्ति, द्युतक्रीड़ा, मदिरा सेवन और घुड़दौड़ में सुख ढूँढ़ने का जो प्रयास करता है, वह व्यर्थ है उसने बतलाया कि सच्चा सुख केवल तभी प्राप्त हो सकता है, जब मनुष्य अपने आपको इतना ढीला छोड़ दे कि वह पूर्ण निष्क्रियता की अवस्था में पहुँच जाय। तब वह समझा जाता है कि वह ताओ (प्रकृति के मार्ग) के साथ एकलय हो गया है। अधिक स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता है कि लाओत्से ने भौतिकवादी साधनों में नहीं, प्रकृति में ही सुख का विश्व देखता था। प्राकृतिक राज्य में प्रेम एवं सहयोग, सरलता तथा निष्कपटता, सुख- शान्ति और संतोष की ही प्रधानता थी। टर्नर ने लिखा है कि ताओ घर्म पिछले चाऊ काल की शहरी सभ्यता की अशान्तियों के विरुद्ध किसानों की प्रतिक्रिया था।

प्रकृति एवं सांसारिक विषयों के बाद लाओत्से ने मानवीय गुणों पर उपदेश दिया। उसका कहना था कि मानव में समत्य वृद्धि और नम्रता के गुण होने चाहिये। उसका मत था कि मनुष्य को अपनी किसी भी प्रकार की शक्ति का

प्रदर्शन नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे अहंकार की बू आती है । उसे यह भी चाहिये कि वह बुराइयों पर ध्यान नहीं दे और कोई बुराई करता है तो वह दया का प्रदर्शन करे । वह कहा करता था कि "बुद्धिमान झगड़ते नहीं हैं क्योंकि झगड़ना अच्छी चीज नहीं है। विद्या कष्ट नहीं देती है।" संक्षेप में, सदव्यवहार उसकी शिक्षा थी, महत्त्वाकांक्षा और दम्भ का वह निन्दक था । वह यह मानता था कि लोगों को इतना शान्त होना चाहिए कि जब उनपर आत्रमण भी किया जाये, तब भी वे लड़े नहीं । उसका कहना था कि जो भले हैं, उनके लिए मैं भला हूँ। इस प्रकार सबको भला बनना है। इसी उपदेश को आए बढ़ाकर वह कहा करता था कि "जो सच्चे हैं उनके लिए मैं सच्चा हूँ और जो सच्चे नहीं है उन के लिए भी में सच्चा हूँ । इस इस प्रकार सब को भला प्रकार सबको भला बनना है ।

लाओत्से भाग्यवादी था, कर्मवादी नहीं । इसीलिए वह भाग्य पर सब कुछ छोड़ देने की बात करता था । इस सिलसिले में वह स्वयं अंधविश्वास और भ्रम का शिकारं था । स्वच्छन्द समाज की संरचना की बात कहकर उसने नियन्त्रणहीन समाज को आमन्त्रित किया जो कल्याणकारी ओर प्रगतिशील नहीं हो सकता था । नियन्त्रित व्यवस्था में ही मानव समुदाय का विकास सम्भव है और इसके लिय कानून की लगाम जरूरी है। कानून से लाई गई शान्ति प्रगति की जड़ है। शान्ति का अर्थ है बुद्धि के विकास की शुरूआत ।

लाओत्से अपने आपको एक दार्शनिक समझता था, किसी धर्म का संस्थापक नही । वह औपचारिक समारोहों और प्रार्थनाओं को महत्वहीन मानता था । उसने विद्या और सम्पत्ति को अधिक महत्त्व नहीं दिया था, इसलिये चीन के करोड़ों अशिक्षित और दरिद्र लोग ताओपन्थ में दीक्षित हो गये ।

'ताओ' का अर्थ 'मार्ग' होता है । यह बुद्ध के आष्टांगिक मार्ग से मिलता-जुलता है । लाओत्से ने अपने सिद्धान्त के सम्बन्ध में 'ताओ लेचिंग' नामक पुस्तक की रचना की थी जिसका अर्थ 'सन्मार्ग लगाया जा सकता है । वह प्रायः कथाओं और पहेलियों के रूप में लिखता था । लेकिन उस के निधनोपरान्त ताओवाद का जो रूप बना, वह पहले के ताओवाद से-भिन्न हो गया जिसे लाओत्से ने बतलाया था । यह एक औपचारिक धर्म बन गया जिसके अपने पुरोहित, मन्दिर और यहाँ तक कि मूर्तियां भी थीं । ताओपन्थी पुरोहित लोगों को अपने धर्म में दीक्षित करने के लिए बौद्ध भिक्षुओं से प्रतियोगिता करने लगे । और लाओत्से को, जिसने अपने लेखों में किसी भी देवता का उल्लेख करने की आत्रश्यकता नहीं समझी थी, अब ताओपन्थ का एक प्रमुख देवता माना जाता है ।

प्रभाव : लाओत्से की विचारधारा का प्रभाव दक्षिणी चीन के क्षेत्रों में पडा । ताओवाद से तत्कालीन साहित्य भी प्रभावित हुआ। इतिहासकार फिट्सजेंराल्ड का कहना है कि ताओवाद का प्रभाव कविता पर अधिक पड़ा था । लेकिन इसके सिद्धान्त में निष्क्रियता, निराशावाद एवं भाग्यवाद को ही विशेष प्रोत्साहन मिला था, इसलिए यह अनुभव लगाया जा सकता है कि उसकी शिक्षा का चीन के लोगों पर बुरा प्रभाव ही पडा क्योंकि उनमें संघर्ष ओर प्रगति की भावना मृतप्राय एवं शिथिल होने लगी थी । चीन में बौद्धधर्म के प्रचार के साथ ताओवाद का प्रभाव भी धीरे-धीरे घटने लगा था ।